॥ॐ॥
॥श्री परमात्मने नमः ॥
॥श्री गणेशाय नमः॥

निर्वाण उपनिषद

विषय सूची

॥अथ निर्वाणोपनिषत् ॥ 3
निर्वाण उपनिषद 5
शान्तिपाठ 12

॥ श्री हरि ॥

॥अथ निर्वाणोपनिषत् ॥

॥ हरिः ॐ ॥

निर्वाणोपनिषद्वेद्यं निर्वाणानन्दतुन्दिलम् ।
त्रैपदानन्दसाम्राज्यं स्वमात्रमिति चिन्तयेत् ॥

वाङ् मे मनसि प्रतिष्ठिता मनो मे वाचि प्रतिष्ठितमाविरावीर्म एधि॥
वेदस्य म आणीस्थः श्रुतं मे मा प्रहासीरनेनाधीतेनाहोरात्रान्
संदधाम्यृतं वदिष्यामि सत्यं वदिष्यामि ॥ तन्मामवतु
तद्वक्तारमवत्ववतु मामवतु वक्तारमवतु वक्तारम् ॥

हे सच्चिदानंद परमात्मन ! मेरी वाणी मन में प्रतिष्ठित हो जाए। मेरा मन मेरी वाणी में प्रतिष्ठित हो जाए। हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर! मेरे सामने आप प्रकट हो जाएँ।

हे मन और वाणी ! तुम दोनों मेरे लिए वेद विषयक ज्ञान को लानेवाले बनो। मेरा सुना हुआ ज्ञान कभी मेरा त्याग न करे। मैं अपनी वाणी से सदा ऐसे शब्दों का उच्चारण करूंगा, जो सर्वथा उत्तम हों तथा सर्वदा सत्य ही बोलूँगा। वह ब्रह्म मेरी रक्षा करे, मेरे आचार्य की रक्षा करे।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

हमारे, अधिभौतिक, अधिदैविक तथा तथा आध्यात्मिक तापों (दुखों) की शांति हो।

॥ हरिः ॐ ॥

॥ श्री हरि ॥

॥ निर्वाणोपनिषत् ॥

(ऋग्वेदीय संन्यासोपनिषत्)

निर्वाण उपनिषद

अथ निर्वाणोपनिषदं व्याख्यास्यामः । परमहंसः सोऽहम् । परिव्राजकाः पश्चिमलिङ्गाः । मन्मथ क्षेत्रपालाः । गगनसिद्धान्तः अमृतकल्लोलनदी ।अक्षयं निरञ्जनम् । निःसंशय ऋषिः । निर्वाणोदेवता । निष्कुलप्रवृत्तिः । निष्केवलज्ञानम् । ॥१-११॥

अब निर्वाणोपनिषद् का वर्णन करते हैं। मैं परमहंस हूँ। मैं वही (ब्रह्म) हूँ। परिव्राजक (संन्यासी) पश्चिमलिङ्ग (अन्तिम स्थिति रूप चिह्न युक्त) होते हैं। कामदेव के लिए क्षेत्रपाल जैसे (अर्थात् कामदेव को रोकने में समर्थ) होते हैं। वे गगन सिद्धान्त वाले अर्थात् आकाश की तरह निर्लिप्त और व्यापक सिद्धान्त वाले होते हैं। वे अमृत तरंगों वाली (आत्मारूपी) नदी के समान होते हैं। उनका स्वरूप अक्षय निरञ्जन अर्थात् अनश्वर और निर्लेप होता है। 'निःसंशय' ही उनका ऋषि है, निर्वाण ही उनका देवता है। उनकी प्रवृत्ति निष्कुल (कुल-गोत्र से परे) होती है। उनका ज्ञान समस्त उपाधियों से मुक्त होता है ॥१-११॥

ऊर्ध्वाम्नायः । निरालम्ब पीठः । संयोगदीक्षा । वियोगोपदेशः । दीक्षासन्तोषपानं च । द्वादशावदित्यावलोकनम् । विवेकरक्षा । करुणैव केलिः । आनन्दमाला । एकान्तगुहायां मुक्तासनसुखगोष्टी । अकल्पितभिक्षाशी । हंसाचारः ।सर्वभूतान्तर्वर्ती हंस इति प्रतिपादनम् । ॥१२-२४॥

उनका अभ्यास उच्चस्थिति के लिए होता है। उनका आसन आश्रयरहित होता है। परमात्मा (ईश्वर) के साथ संयोग ही उनकी दीक्षा है। संसार से वियोग करना (मुक्त होना) ही उनका उपदेश है। दीक्षा लेकर सन्तोष करना ही उनका पावन कर्म करना है। द्वादश आदित्यों का (प्रलयकाल का) वे दर्शन करते हैं। (क्योंकि प्रलय काल में ही द्वादश आदित्य एक साथ उदीयमान होते हैं)। वे विवेक के द्वारा अपनी रक्षा करते हैं। दया (करुणा) ही उनकी क्रीड़ा (खेल) है। आत्मिक आनन्द ही उनकी माला है। एकान्त रूपी गुहा में | मुक्त होकर सुखपूर्वक बैठना ही उनकी गोष्ठी है। (अपने हाथ से) न बनाया हुआ, (अपितु माँग कर प्राप्त किया हुआ) भोजन ही उनकी भिक्षा है। वे हंसाचारी होते हैं अर्थात् उनका आचरण हंसों जैसा (नीरक्षीरविवेकी) होता है। समस्त प्राणियों के अन्तर में रहने वाला आत्मा ही हंस है, ऐसा उनका प्रतिपादन है॥१२-२४॥

धैर्यकन्था । उदासीन कौपीनम् । विचारदण्डः । ब्रह्मावलोकयोगपट्टः। श्रियां पादुका । परेच्छाचरणम् । कुण्डलिनीबन्धः । परापवादमुक्तो जीवन्मुक्तः ।शिवयोगनिद्रा च ।

खेचरीमुद्रा च । परमानन्दी । निर्गतगुणत्रयम् । विवेकलभ्यं मनोवागगोचरम् । अनित्यं जगद्यज्जनितं स्वप्नजगदभ्रगजादितुल्यम् । तथा देहादिसङ्घातं मोहगुणजालकलितं तद्रज्जुसर्पवत्कल्पितम् । विष्णुविद्यादिशताभिधानलक्ष्यम् । अङ्कुशो मार्गः । शून्यं न सङ्केतः। परमेश्वरसत्ता । सत्यसिद्धयोगो मठः । अमरपदं तत्स्वरूपम् ।आदिब्रह्मस्वसंवित् । अजपा गायत्री । विकारदण्डो ध्येयः। ॥२५-३६॥

धैर्य उन (संन्यासियों) की गुदड़ी है। उदासीन प्रवृत्ति उनकी कौपीन (लँगोटी) है। विचार ही उनका दण्ड है, ब्रह्म का अवलोकन ही उनका योगपट्ट है, सम्पदा उनकी पादुका है (धन-सम्पदा को वे पैर की जूती की तरह तुच्छ वस्तु समझते हैं)। परेच्छा ही उनका आचरण है (ईश्वर की इच्छा से ही वे देह धारण और चेष्टा करते हैं)। कुण्डलिनी ही उनका बन्ध है। वे परापवाद (परनिन्दा) से मुक्त होकर जीवन्मुक्त होते हैं। कल्याणकारी ईश्वर के साथ योग ही उनकी निद्रा है। उस निद्रा और खेचरी मुद्रा को धारण करके वे परमानन्द का अनुभव करते हैं। वह (ब्रह्म) तीनों गुणों से अतीत अर्थात् त्रिगुणातीत-निर्गुण है। वह विवेक द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। वह मन और वाणी द्वारा प्राप्य नहीं है अर्थात् वह मन और वाणी का अविषय है। (जिस प्रकार) यह जगत् अनित्य है, इससे जो जन्मा है, वह स्वप्न के संसार की तरह और आकाश में बने बादलों के हाथी आदि की तरह मिथ्या है, उसी प्रकार यह देह आदि संघात, मोह आदि दोषों से युक्त है और यह सब रस्सी में सर्प की भ्रान्ति के समान मिथ्या है। विष्णु, विधि (ब्रह्मा) आदि सैकड़ों नामों वाला ब्रह्म ही लक्ष्य है। इन्द्रियों पर अंकुश रखना ही (ब्रह्म प्राप्ति का) मार्ग है। ब्रह्म प्राप्ति का वह मार्ग शून्य

संकेत (विष्णु आदि देव शक्तियों से रहित) नहीं है। समस्त जीवों पर ईश्वर की सत्ता है। सत्य और सिद्ध हुआ योग ही (संन्यासी का)। मठ है। अमर पद (स्वर्ग) उस (ब्रह्म) का स्वरूप नहीं है। आदि ब्रह्म से स्व की एकरूपता ही ज्ञान है। उक्तभाव (सोऽहं) का अजपा जप ही गायत्री है। विकारों के ऊपर नियन्त्रण पाना ही ध्येय है॥२५-३६॥

मनोनिरोधिनी कन्था । योगेन सदानन्दस्वरूपदर्शनम् ।
आनन्द भिक्षाशी । महाश्मशानेऽप्यानन्दवने वासः ।
एकान्तस्थानम् । आनन्दमठम् । उन्मन्यवस्था ।
शारदा चेष्टा । उन्मनी गतिः । निर्मलगात्रम् ।
निरालम्बपीठम् । अमृतकल्लोलानन्दक्रिया ।
पाण्डरगगनम् । महासिद्धान्तः ।
शमदमादिदिव्यशक्त्याचरणे क्षेत्रपात्रपटुता ।
परावरसंयोगः । तारकोपदेशाः । अद्वैतसदानन्दो देवता । ॥३७-४८॥

मन का निरोध करने वाली प्रवृत्ति ही कन्था (गुदड़ी) है। संन्यासी गण योग के द्वारा परब्रह्म के सदानन्द स्वरूप का दर्शन करते हैं। वे (परिव्राजक-संन्यासी) आनन्दरूप भिक्षा का ही भोजन करते हैं। वे महाश्मशान में भी आनन्द वन की भाँति निवास करते हैं। एकान्त स्थल ही उनका मठ होता है। उनकी उन्मनी (निर्विकल्पक) अवस्था तथा शारदा (उज्वल) चेष्टा होती है। उनकी उन्मनी निर्विकल्पकरूपी गति होती है। उनका निर्मल शरीर और आश्रयरहित आसन होता है। अमृत रूपी महान् सागर की तरंगों में आनन्दित रहना ही उनकी क्रिया है। चिदाकाश ही उनका महा सिद्धान्त है। शम, दम आदि

दिव्य शक्तियों के आचरण (व्यवहार) में क्षेत्र और पात्र का ध्यान रखना उनकी पटुता (कुशलता) है। परावर (ब्रह्म) के साथ संयोग ही उनका तारक उपदेश है। अद्वैत सदानन्द ही उनका देवता है॥३७-४८॥

नियमः स्वातरिन्द्रियनिग्रहः । भयमोहशोकक्रोधत्यागस्त्यागः । अनियामकत्वनिर्मलशक्तिः । स्वप्रकाशब्रह्मतत्त्वे शिवशक्तिसम्पुटित प्रपञ्चच्छेदनम् । तथा पत्राक्षाक्षिकमण्डलुः । भवाभावदहनम् । बिभ्रत्याकाशाधारम् । शिवं तुरीयं यज्ञोपवीतम् । तन्मया शिखा । चिन्मयं चोत्सृष्टिदण्डम् । सन्तताक्षिकमण्डलुम् । कर्मनिर्मूलनं कन्था । मायाममताहङ्कारदहनम् । स्प्रशाने अनाहताङ्गी । निस्त्रैगुण्यस्वरूपानुसन्धानं समयम् । भ्रान्तिहरणम् । कामादिवृत्तिदहनम् । काठिन्यदृढकौपीनम् । चीराजिनवासः । अनाहतमन्त्रः । अक्रिययैव जुष्टम् । स्वेच्छाचारस्वस्वभावो मोक्षः परं ब्रह्म । प्लववदाचरणम् । ब्रह्मचर्यशान्तिसंग्रहणम् । ब्रह्मचर्याश्रमेऽधीत्य ससर्वसंविन्यासं संन्यासम् । अन्ते ब्रह्माखण्डाकारम् । नित्यं सर्वसन्देहनाशनम् । ॥४९-६०॥

अपनी इन्द्रियों का निग्रह करना ही उन (परिव्राजक संन्यासियों) का नियम होता है। भय, मोह, शोक एवं क्रोध का परित्याग करना ही उनका त्याग है। वे परब्रह्म के साथ एकत्व का रसास्वादन करते हैं। अनियामकत्व (न किसी को वश में करना और न ही किसी का तिरस्कार करना) ही उनकी निर्मल शक्ति होती है। वे स्व प्रकाशित ब्रह्म तत्त्व में शिव-शक्ति से संपुटित प्रपञ्च का उच्छेदन करते हैं। वे

पत्र (कारण शरीर), अक्ष (सूक्ष्म शरीर) और अक्षि (स्थूल शरीर) इन तीनों शरीरों के भाव और अभाव को दग्ध (विनष्ट) करने वाले होते हैं। वे आकाशरूपी आधार को धारण करने वाले होते हैं। तुरीयावस्था में स्थित शिव अथवा ब्रह्म ही उनका यज्ञोपवीत और शिवमयी (ब्रह्ममयी ज्ञान) शक्ति ही उनकी शिखा है। चिन्मय स्वरूप होने के कारण उनकी दृष्टि में स्थावर और जङ्गम समूची सृष्टि ब्रह्म ही है। कर्मों को निर्मूल कर देना (अर्थात् कर्मफल से न बँधना) ही उनकी कथा है। वे माया, ममता और अहंकार को दग्ध कर डालने के लिए श्मशान भूमि में अनाहत अंग (अवधूत-विदेह) होकर विचरण करते हैं। जो त्रिगुणातीत हैं, निज स्वरूप के अनुसन्धान और भ्रान्ति के हनन में ही जिनका समय लगता है; जो काम आदि वृत्तियों का दहन करते रहते हैं, जो कौपीन धारण करके कठोरतापूर्वक संयम का पालन करते हैं, जो चिरकाल तक मृगचर्म रूप वस्त्र धारण करते हैं, जो निरन्तर अक्रिया द्वारा ही अनाहत नाद रूप मन्त्र का सेवन करते हैं; उन (संन्यासी परिव्राजकों) का स्वभाव स्वेच्छाचारी (अपनी आत्मा के निर्देश के अनुरूप आचरण करने वाला) होता है, यही उनका मोक्ष है। परब्रह्म स्वरूप लक्ष्य की प्राप्ति हेतु ज्ञानरूपी नौका के समान आचरण करने वाला अवधूत पहले ब्रह्मचर्य द्वारा शान्ति प्राप्त करता है। ब्रह्मचर्याश्रम में अध्ययन के उपरान्त वानप्रस्थ आश्रम में भी अध्ययन(चिन्तनमनन-निदिध्यासन) करता है और ज्ञान सम्पन्न होकर समस्त ज्ञान (लौकिक ज्ञान) का परित्याग कर देता हैयही संन्यास है। अन्त में नित्यं ब्रह्म के अखण्ड आकार की स्थिति में पहुँचकर समस्त संशयों का नाश कर देता है॥४९-६०॥

एतन्निर्वाणदर्शनम् ।
शिष्यं पुत्रं विना न देयमित्युपनिषत् ।॥६१॥

यही निर्वाण का तत्त्वदर्शन है। इसका उपदेश शिष्य या पुत्र (अत्यधिक श्रद्धा-समर्पण भाव वाले) के अतिरिक्त अन्य किसी के प्रति नहीं करना चाहिए। यही उपनिषद् (रहस्य) है॥६१॥

शान्तिपाठ

॥ हरिः ॐ ॥

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमदुच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

वह परब्रह्म पूर्ण है और वह जगत ब्रह्म भी पूर्ण है, पूर्णता से ही पूर्ण उत्पन्न होता है। यह कार्यात्मक पूर्ण कारणात्मक पूर्ण से ही उत्पन्न होता है। उस पूर्ण की पूर्णता को लेकर यह पूर्ण ही शेष रहता है।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

हमारे, अधिभौतिक, अधिदैविक तथा तथा आध्यात्मिक तापों (दुखों) की शांति हो।

॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

॥ इति निर्वाणोपनिषत् समाप्ता ॥

॥ निर्वाण उपनिषद समात ॥

संकलनकर्ता:

श्री मनीष त्यागी

संस्थापक एवं अध्यक्ष
श्री हिंदू धर्म वैदिक एजुकेशन फाउंडेशन

www.shdvef.com

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय: ॥